International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 20-02-2026, Accepted: 22-03-2026, Published: 06-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 18-21

केदारनाथ 'शब्द मसीहा' के लघुकथा, कहानी और व्यंग्य में अस्मिता परक यथार्थ

डॉ. योगेश कुमार तारक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजिम, शास. राजीव लोचन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजिम, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश
प्रस्तुत आलेख में 'अस्मिता परक यथार्थ' की अवधारणा को समकालीन सामाजिक और साहित्यिक संदर्भों में स्पष्ट किया गया है। आधुनिक युग में स्वतंत्रता और संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद व्यक्ति की अस्मिता संकटग्रस्त दिखाई देती है। 'अस्मिता' का संबंध 'निजत्व', 'स्वत्व' और 'मैं हूँ' की चेतना से है, जो आत्मसम्मान और पहचान का बोध कराती है। किंतु वर्तमान समाज में व्यक्तिवाद, एकाकीपन और स्वार्थ की प्रवृत्ति के कारण यह चेतना वैमनस्य और संघर्ष का रूप लती जा रही है। साहित्य, जो समाज की चित्तवृत्तियों का प्रतिबिंब है, इस अस्मिता संकट को अभिव्यक्त करते हुए विभिन्न वर्गों–भाषा, धर्म, जाति, लिंग आदि से जुड़े अस्मितामूलक प्रश्नों को सामने लाता है और उनके समाधान की दिशा में मार्ग प्रशस्त करता है।
आलेख में विशेष रूप से नारी अस्मिता, दलित अस्मिता और अल्पसंख्यक अस्मिता के संदर्भ में सामाजिक यथार्थ को रेखांकित किया गया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री को द्वितीय स्थान दिए जाने का विरोध करते हुए नारी अस्मिता को स्वतंत्रता, सम्मान और समानता के संघर्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इतिहास और साहित्य में अनेक स्त्रियों ने अपनी पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष किया, जिससे नारी चेतना को बल मिला। इसी प्रकार दलित वर्ग भी संवैधानिक अधिकारों के बावजूद सामाजिक शोषण का शिकार है, जिसके प्रतिरोध में साहित्य सशक्त माध्यम बनकर उभरता है। इस प्रकार 'अस्मिता परक यथार्थ' सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना का महत्वपूर्ण आधार सिद्ध होता है।

मूल शब्दः अस्मिता, अस्मिता परक यथार्थ, आत्मसम्मान, पहचान, व्यक्तिवाद, नारी अस्मिता, दलित अस्मिता, अल्पसंख्यक अस्मिता, पितृसत्ता, सामाजिक न्याय, साहित्य और समाज।

वर्तमान समय में स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता के बहुतायत संसाधन होने पर भी 'अस्मिता' खतरे में दिखाई देती है। साहित्य एवं समाज दोनो स्थलों पर 'अस्मिता' शब्द बहुचर्चित हो रहा है। आधुनिकीकरण के इस युग में जहाँ मानव सर्वश्रेष्ठ बनने की डगर पर तीव्र गति से बढ़ रहा है वहीं पर उसकी 'अस्मिता' के विषय पर चर्चा करना स्वाभाविक हो जाता है। अस्मिता की अवधारणा 'निजत्व' के प्रश्न से व्युत्पन्न होकर क्रमशः–क्रमशः वैमनस्य या विरोध की ओर अग्रसर हो रही है क्योंकि आज पूर्ण रूप से हमारा समाज एवं साहित्य 'सहित' तथा 'सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय' से हटकर 'यस्य दण्डिः तस्य महिषी' (जिसकी लाठी उसकी भैंस) तक सिमटता जा रहा है। यह पढ़ने या सुनने में भले ही अटपटा लग रहा है किन्तु सत्य तो यही है कि यथा–यथा एकाकीपन और 'स्व' की भावना का वर्चस्व हुआ है तथा–तथा व्यक्ति असंगठित महसूस करता हुआ स्वयं की अस्मिता के साथ समझौता करने को मजबूर हो रहा है।
'अस्मिता' शब्द की उत्पत्ति अस्मि+तल+टाप् प्रत्यय के संयोग से हुई है जिसका अर्थ है 'अहंकार' जो आत्मश्लाधा, मोह आदि के साथ भी प्रयुक्त होता है जिसमें 'अस्मि' शब्द अस् धातु में मिन् प्रत्यय के योग से बनता है जिसका अर्थ है – मैं हूँ। जिससे स्वामित्व या 'स्वत्व' का बोध कराता है। इसी अस्मि की भाववाचक संज्ञा का नाम ही अस्मिता है। आधुनिक विद्वान अभय कुमार दुबे ने 'अस्मिता' के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि– "यह एक ऐसा दायरा है जिसके तहत व्यक्ति और समुदाय यह बताते हैं कि वे खुद को क्या समझते हैं।"[1] 'अस्मिता' शब्द कालान्तर में इतना चर्चित हुआ कि सभी साहित्यकारों ने इसे अपने–अपने आधार पर गढ़ने और परिभाषित करने का प्रयास शुरू किया। इस सम्बन्ध में स्वयं श्री नामवर सिंह जी इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कहा है कि– "हिन्दी में अस्मिता पहले नहीं था। 1947 से पहले की किताबों में मुझे तो नहीं मिला। पहली बार अज्ञेय ने 'आइडेंटिटी' के लिए अनुवाद 'अस्मिता' शब्द का प्रयोग किया।"[2] 'अस्मिता' शब्द पर शोधार्थी रामसुधि ने भी अपने भाव व्यक्त करते हुए अपने एक शोध पत्र में स्पष्ट कहने का प्रयास किया है कि– "अस्मिता का प्रश्न साहित्य और समाज में अपनी मूल जड़ों का प्रशस्ति गान नहीं है न ही अपनी हीनतर भावना की उद्घोषणा है। साहित्य समाज की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है। ऐसे में रचनाकार समाज की बातों को साहित्य के माध्यम से पाठक के मनोपृष्ठ पर सम्यक् और अनवरत रूप से लाते रहे हैं।"[3] जहाँ तक मेरा अपना मानना है कि 'अस्मिता' शब्द साहित्य तथा सोच में चाहे भले ही वर्तमान युग की देन कहा गया हो किन्तु इसका सम्बन्ध मानव के उदभव काल से लेकर उसकी प्रत्येक संस्कृति का हमसफर रहा है भले ही चाहे वह अलिखित रूप में समाज में व्याप्त रहा हो।
समकालीन परिप्रेक्ष्य में 'अस्मिता' का अर्थ आंग्लभाषा में भले ही 'आईडेंटिटी' के लिए जोड़ दिया गया हो किन्तु वास्तव में 'अस्मिता' शब्द 'आत्मसम्मान' से जुड़ा है। हमारे समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह जिस धर्म, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय का हो उसका अपना महत्व एवं आत्मसम्मान है। एक प्रिंसिपल, शिक्षक का जितना सम्मान अपने महाविद्यालय में है उतना ही सम्मान उस विद्यालय में रहने वाले चतुर्थ, तृतीय एवं सफाईकर्मी का भी है। यही तरीका हमारे मानव समाज में भी है किन्तु समाज के कुछ उच्चवर्ग के व्यक्ति स्वयं की 'अस्मिता' की बात पर युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं और अन्य के मान–सम्मान, आत्मश्लाघा की उन्हें कोई परवाह नहीं होती है और तभी प्रारम्भ होता है 'अस्मिता परक विमर्श'। इस प्रकार के विषय पर चर्चा चाहे किसी ने किया हो या न किया हो किन्तु हमारा साहित्य अवश्य किया है। प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक के साहित्यकारों में 'अस्मिता परक यथार्थ' प्रमुख रहा है ये सभी साहित्यकार समाज में व्याप्त इस कड़ी को अपने साहित्य में सुलझाने का प्रयास अवश्य किया है। अस्मिताविमर्श मूलरूप से भाषा, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति, स्त्री आदि विषयों को स्पर्श करता हुआ चलता

है। अस्मिता परक यथार्थ के वर्णन में कवि/रचनाकार की वाणी निडर होकर वर्णन करती है। रचनाकार यथार्थ वर्णन में तीखी बयानबाजी करता है जिससे नारी, दलित, अल्पसंख्यक आदि की 'अस्मिता' पर विचार से चर्चा कर उनका आत्मसम्मान बरकरार रखा जा सकें। 'अस्मिता परक यथार्थ' वर्णन में स्त्री (नारी) अस्मिता प्रमुख है क्योंकि नारी की मर्यादा प्रत्येक मानव समाज का प्रथम संरक्षित विषय रहा है चाहे वह जिस वर्ग या सम्प्रदाय की नारी रही है। हिन्दी साहित्य में नारी अस्मिता संरक्षण वह जनहित आन्दोलन है जिससे नकारी गई/वंचित की गई स्त्री के अस्तित्व (मर्यादा) को फिर से केन्द्र पर लाने का और उसके पूर्णतया संरक्षण का संकल्प किया गया। नारी अस्मिता का पोषण हिन्दी साहित्य नारी को सामाजिक संरचना में द्वितीय पायदान पर रखने का प्रबल विरोध तथा नारी को ईश्वरीय शक्ति के रूप में मानने का कार्य किया है।

नारी अस्मिता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितनी पुरानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था। पुरूष प्रधानता यदि दाम्पत्य प्रेम को विनष्ट कर नारी दासत्व में रखने का नाम है तो निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि नारी अस्मिता उस दासत्व से मुक्त होकर स्त्री/पुरूष (पति–पत्नी) के मध्य अनुराग को स्थापित करने का नाम है। स्त्रियों का अपनी अस्मिता को बचाने के लिए हमेशा संघर्षमय जीवन व्यतीत करना पड़ा है। इन नारियों में अपाला, घोषा, गार्गी, लोपामुद्रा, देवयानी, गार्गी, रमाबाई, एनी बेसेण्ट, सरोजनी नायडू, मीराबाई, विजय लक्ष्मी पंडित, सावित्री बाई फूले आदि का विशेष योगदान रहा है। कवियित्री मीराबाई ने नारी अस्मिता पर जोर डालते हुए झूठी नारी मर्यादा का घोर विरोध किया यथा–

"लोक लाज कुल मानि जगत की
ददू बहाय जस पानी
अपने घर का परदा कर ले
मैं अबला बैरानी।"[4]

नारी अस्मिता की परिपाटी सामान्य स्त्रियों से होती हुई जब मीरा की कलम का विषय बनी तो अपनी गहरी छाप छोड़ गई। फलस्वरूप काव्य जगत में भी महिला रचनाकारों ने भी इसे समझा और फिर अपनी कलम के माध्यम से नारी अस्मिता के संघर्ष की साक्षी बनी। जैसा कि 'खेतान' महोदय ने लिखा है कि– "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियती में बदलाव है उसके व्यक्तित्व जीवन का उद्देश्य, दर्शन उसका मन–मिजाज सभी तो बदल रहा है।"[5] दूसरी ओर दलित अस्मिता पर चर्चा करें तो भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के बावजूद भी हमारे समाज का दलित वर्ग प्रताड़ित हो रहा है। इसलिए उसके संवर्धन हेतु साहित्य भी संविधान की तरह कार्य कर रहा है फलस्वरूप दलितोत्थान हेतु रचनाकारों ने दलित साहित्य का सृजन किया। जिससे दलित जागृत हुआ और अपने अधिकार की तलाश जारी किया और वर्तमान में अपनी अस्मिता को संरक्षित, बचाने की मांग कर रहा है। दलित अस्मिता का यह प्रश्न भले ही पूँजीपतियों और शोषक वर्ग तक न पहुँच रहा हो किन्तु कलम के धनी रचनाकारो तक अवश्य पहुँचा है और प्रत्येक रचनाकार ने इस आत्मपीड़ा को अपने साहित्य में रखने का प्रयास किया है। जैसा कि ओम प्रकाश बाल्मीकि, आचार्य विद्यासागर, प्रेमचन्द्र, डॉ. अम्बेडकर, एस.सी. दुबे, राजेन्द्र यादव इत्यादि। राजेन्द्र यादव ने दलितो की अस्मिता पर चर्चा करते हुए कहा है कि– "यह सच है कि दलितों और स्त्रियो के लिए मुक्ति मार्ग पहले व्यापार ने और फिर अंग्रेजों ने खोले। उपनिवेश पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए उन्होंने भौगोलिक सर्वेक्षणों के द्वारा नक्से तैयार किए तो दूसरी ओर मर्दमशुमारी की प्रक्रिया द्वारा सारे देश की जातियों, धर्मो, भाषाओं और अन्य विशिष्टताओ की पहचान की। xxxxx मगर प्रशासन और कानून की दृष्टि में एक ब्राह्मण और शूद्र दोनों बराबर थे। उधर ईसाई धर्म भी इसी समता की बात करता था कि शिक्षा, जीविका या रहन–सहन के सबको एक ही अधिकार होने चाहिए। यह सिद्धान्त अपने आप में क्रांतिकारी और जड़ हिन्दू समाज को बौखला देने के लिए काफी था।"[6] अन्य सभी साहित्य सृजनकर्ताओं के ही समान केदारनाथ 'शब्द मसीहा' की लघु कथाओं तथा व्यंग्य में भी अस्मिता परक यथार्थ उभर कर सामने आया है। ओमप्रकाश बाल्मीकि की तरह ही 'शब्द मसीहा' की कलम स्त्री अस्मिता के साथ–साथ दलित अस्मिता पर ज्यादा चली है। वे हर मज़लूम मजदूर की अस्मिता के पारखी है यथा– "कुछ देर बाद एक महिला निकली। रिक्शे वाले ने कहा– 'आपने तो पाँच मिनट रूकने को कहा था।' अरे! जल्दी कर। पहले सीट साफ़ कर मेरे कपड़े भीग जायेंगे। उसने कमर से अपना गमछा खोला और सीट साफ कर दी। 'ये तो गन्दा होगा। सही से साफ करो।' इस बार रिक्शे वाले ने अपने सिर से कपड़ा उतारा और सीट को साफ किया। xxxxx रिक्शा वाला भीग रहा था और उन्हें उसमें गंदगी नज़र आ रही थी।"[7]

'नारी घर की उजियारी' का अलाप जगाने वाला यह संसार कितना गैर जिम्मेदार है यह बात तब पता चलती है जब नारी अस्मिता पर बात चलती है। पुरूष प्रधान समाज में 'नारी' कहीं भी सुरक्षित नहीं है। वह पुरूष की पैनी निगाहों का शिकार होकर बलात्कार की दहलीज तक पहुँचा दी जाती है और न्यायकर्ता नारी का ही दोश मानकर बलात्कारियों को अवमुक्त कर देते हैं। जैसा कि केदारनाथ 'शब्द मसीहा' ने लिखा है– "पाँच दरिंदों ने रेप किया था उसकी बेटी का। दो दिन बाद होश आया था। वह बेटी के पलंग के पास से हिला भी न था। "कैसी हो बेटी?" उसके माथे पर हाथ फेरते हुए पूछा। 'सॉरी पापा! मैं आपके लिए केक और बुके नहीं ला सकी।' उसने पापा की हथेलियों पर आँसू ढलका दिये। xxxxx "पापा! ये दुनिया ऐसी क्यों है? मुझे आपका जन्मदिन भी न मनाने दिया। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा था?" पिता छत की ओर देखता रहा जैसे बेटी के प्रश्न का जवाब ढूँढ रहा हो।"[8]

'अस्मिता' की रक्षा करने वाले ही जब उसकी परतें उधेड़ने लगे तो नारी अस्मिता शेष ही कहाँ रह जाती है। नारी की गौरव गाथा गाने वाले हमारे समाज में नारी अस्मिता के यथार्थ का विश्लेषण करते हुए 'शब्द मसीहा' ने अपनी लघु कथाओं में कहा है वर्तमान समय में नारी संरक्षा की दलील करने वाले ही उसकी अस्मिता पर डाका डालने को तत्पर रहते हैं। यथा– "साहब! हमारी बेटी के साथ गलत काम किया है कुछ दबंग लोग। xxxxx ये बता क्या–क्या हुआ उसके साथ? पुलिस वाला बोला। xxxxx पुलिसवाले ने लड़की का कमीज को जोर से खिंचा। चर्र की आवाज के साथ लड़की का सीना नंगा हो गया। 'ऐसे कपड़े फटे हुए थे?' वह वर्दीवाला बोला। लड़की ने शर्म से अपने दोनों हाँथों को सीने पर रख लिया।"[9]

नारी अपनी आबरू नष्ट करने के लिए पुरूष को दोशी मानती है और पुरूष है भी किन्तु जब नारी ही नारी के शोषण में सहायक होकर उसकी इज्जत तार–तार करने में लग जाए तो क्या कहा जाए। केदारनाथ 'शब्द मसीहा' ने इस प्रश्न को बड़ी ही गंभीरता के साथ लेते हुए इसका उदारहण भी अपनी लघु कथाओं में दिया और उत्तर समाज पर छोड़ दिया है– "अरी! अम्मा, वो पाँच नम्बर वाली कबूतरी आज आने को मना कर रही है। क्यों? पूरे पचास हजार दिये हैं कुतिया के गोरी चमड़ी का गुरूर है क्या? xxxxx क्यों री पहाड़ी मैना! आज काहे ना नुकुर करती है। xxxxx 'अम्मा हमको! दिन आया है।..... हम पाँच दिन अब काम नहीं करेगी।.....' 'साली के दिन आये हैं। चल आज डॉ. के पास ले चलती हूँ। फिर कभी दिन नहीं आयेंगे तेरे।' क्या मतलब अम्मा। हमको चालू मशीन चाहिए..... पाँच दिन तुझे कचरा बहता रहेगा तो अपने धंधे की तो हो गई छुट्टी।"[10] हमारे यहाँ एक

देशी कहावत है कि 'वेश्या का घर जले और गुंडा पिछवाड़ा सेंके' अर्थात् दुःखी व्यक्ति की मदद के बजाय उससे ठिठौली करना। ठीक ऐसे ही हमारे रक्षक वर्ग भी है जो मदद करने को तो दूर उसकी अस्मिता पर ही खुरेंचे लगाने से नहीं चूकते हैं और तभी कवि/रचनाकार भी अपने साहित्य के माध्यम से इस यथार्थ को बाखूबी वर्णित करने से नहीं चूकते हैं। केदारनाथ 'शब्द मसीहा' भी एक ऐसे ही रचनाकार हैं जो यथार्थ वर्णन में सजग होकर हकीकत पाठक वर्ग के सामने रखते हैं– "साहब! आप जल्दी घर जाओ, फोन आया है किसी दरिंदे ने आपकी पत्नी पर बलात्कार किया है।" सिपाही फोन सुनते ही चिल्लाया। "क्या बकते हो! ऐसा कैसे हो सकता है? वह अपनी कुर्सी से उठा और भागने लगा घर की ओर। ओ साहब! कहाँ चले। तीन दिन इंतजार करो न, डिटेल में उससे भी पूछना किसने उसकी टाँग पकड़ी, किसने उसे चूमा और कहाँ–कहाँ हाँथ लगाने पर मजा आया।"[11]

दलितों के मसीहा के रूप में चर्चित डॉ. अम्बेडकर के समान केदारनाथ 'शब्द मसीहा' होते हुए भी दलित मसीहा भी है। उनकी अनेकानेक रचनाओं में दलित उत्थान की चर्चा हुई। दलितोत्थान ही आपका एक मात्र लक्ष्य है किन्तु लेखक की परेशानी तब बढ़ जाती है जब दलितों में भी सवर्ण का प्रभाव दिखाई पड़ता है। दलित जातियों में भी दलित और सवर्ण का खेल बड़ी तेजी से खेला जा रहा है। दलितों की उच्च जातियाँ निम्न जातियों के साथ ठीक वैसा ही व्यवहार करती है जैसे सवर्ण दलित के साथ। वे स्वयं पूछते हैं भाई कौन जात के हो? जबकि दलित की एक ही जाति है दलित। दलित भाई अपने ही दलित भाई से अपमानित हो रहा है। इस यथार्थ को भी रचनाकार ने सभी के समक्ष प्रस्तुत किया है जहाँ दलित अस्मिता का प्रश्न हो। "भैया! कहाँ से आये हो? कौन जात के हो तुम? xxxxx मैंने भी कुछ मजाक करने की सोच ली। 'दादा! दिल्ली से आये हैं हम। हम मथुरा के पंडित हैं।' ओह! माफ करना बेटा! हम तो हरिजन हैं। पर यहाँ खटिक और दूसरी छोटी जाति के भी हैं सो तुमसे पूछ लिया।"[12]

आज इंसान भुखमरी और बेरोजगारी से तो परेशान है ही किन्तु उससे कहीं ज्यादा वह धर्म और जाति से दुःखित है। इंसान–इंसान में कैसा फर्क फिर भी हिन्दू–मुस्लिम का यह द्वन्द्व मानव जाति को खोखला बना रहा है। राजनीति से लेकर हमारे घरेलू जीवन तक यह जहर इतना फैल चुका है कि हम उससे बच नहीं पा रहे हैं। केदारनाथ 'शब्द मसीहा' ने अपने यथार्थ विश्लेषण में अल्पसंख्यक अस्मिता पर भी पाठक वर्ग को खींचा है और सवाल किया है कि आखिर ये दूरियाँ कब पटेगीं? कब इंसान इंसान की पहचान कर सकेगा? अस्मिता परक यथार्थ का एक उदाहरण देखिए– "अरे! अकरम चलो न यार मुझसे यह थ्योरम सोल्व नहीं हो रहा है। तुम्हारा घर दूर है। मेरा घर, तो रास्ते में ही पड़ता है। धूप भी है। थोड़ा आराम भी मिल सकेगा। विवके पंडित अकरम से मनुहार कर रहा था। ठीक है..... पर.... और अकरम चुप हो गया था। अरे! नहीं, मेरे घर के लोग बहुत अच्छे हैं। xxxxx दोनो घर पहुँच पढ़ने लगे थे। xxxxx कुछ देर बाद माँ आ गई थी। अकरम को देख जितनी खश हुई थी, टोपी देखकर मन खिन्न हो गया था। xxxxx अकरम के जाते ही विवेक को नहाने को कहा और कामवाली से बोली– "जमना! जा. ... और गंगाजल छिड़क दे। घर अपवित्र हो गया है।" "पर अम्मा! उसके कपड़े से इत्र की खुशबू आ रही थी।" चटाक की आवाज ने प्रश्नों का गला घोंट दिया था विवके के।"[13]

छुआछूत का खेल तब तक प्रभावी रहता है जब तक उच्च का निम्न से कोई कार्य न हो। और जैसे ही कोई कार्य हो तो वह उच्च निम्न का प्रिय बनने का प्रयास करने लगता है और कार्य सिद्धी की स्थिति में पूर्व की भाँति हो जाते हैं और यदि यह स्थिति हवस की हो तो फिर दोनो के मध्य कोई भी दूरी नहीं रह जाती है और उच्च वर्ग चंद रूपये देकर निम्न की अस्मिता के साथ खेलते रहते हैं। केदारनाथ 'शब्द मसीहा' ने एक ऐसी ही कथा का जिक्र अपने साहित्य में किया है जिसका शीर्षक है 'राजमणि दुग्गा माँ'। देखिए–

"आप हमको छू लिया बनिया बाबू! अब आपको नहाना पड़ेगा। हम तो अछूत हैं। राजमणि बोली थी।

'अरे! कौन कहता है ऐसा? हम नहीं मानते। चलो एक बार और नहा लेंगे, आओ तुमको अच्छे से छू लेते हैं रानी।' बनिया बाबू ने राजमणि को अपने आगोश में भर लिया।

'क्या करते हैं बनिया बाबू? हम वैसी नहीं हैं। छोड़िए हमको।' राजमणि ने छूटने का प्रयास किया। वह उसे खींचकर अंदर ले गया। राजमणि चिल्लाई भी, मगर उसने राजमणि को होंठों को अपने मुँह में भर लिया। बलिष्ठ होना उसके लिए सहायक रहा। कुछ देर बाद वह जोर–जोर से हाँफ रहा था और राजमणि सिसकियाँ भर रही थी। बनिया बाबू ने सौ का नोट उसके ब्लाऊज में घुसेड़ दिया।"[14]

कामुकता की आग जब प्रदीप्त होती है तब वह रिश्तों को महत्व नहीं देती है। चाहे वह स्त्री में हो अथवा पुरूष में। कामुक स्त्री भी अपनी अस्मिता पुरूष को सौंपने पर तैयार हो जाती है सारे रिश्तो के बंधन तोड़कर। अपनी जादुई कलम से शब्दों को जोड़ने वाले केदारनाथ 'शब्द मसीहा' ने अपनी लघु कथाओं में इस प्रश्न को बड़ी ही सरलता से खोला है– "भाई! जब बात ज़िस्म पर आकर रूक जाती है, तब आदमी में और जानवर में कोई फर्क नहीं रहता। औरत को न बेटा दिखाई देता, है और न मर्द को बेटी दिखाई देती है..... उस वक़्त उनके लिए अगर कुछ अहम होता है, तो वह उनके ज़िस्म की प्यास होती है। यह ज़िस्म की प्यास किसी ज्वालामुखी से कमतर नहीं होती, इसके अंदर सारे रिश्ते जलकर भस्म हो जाते हैं। जब एक औरत अपनी बेटी के सुहाग को अपनी सेज पर लाने की कोशिश करती है, तो ऐसी औरत को माँ कह देना, माँ जैसे पाक़ और पवित्र नाम की तौहीन करना है।"[15]

निष्कर्ष

इस प्रकार देखा गया कि केदारनाथ 'शब्द मसीहा' की लघु कथाओं एवं व्यंग्य में अस्मिता परक यथार्थ का खुलकर वर्णन हुआ। आपकी लेखनी केवल नारी अस्मिता पर ही न रूककर दलित एवं अल्पसंख्यक अस्मिता पर भी चलती दिखाई देती है। वे व्यक्ति के व्यक्तिगत दर्द और अस्मिता के साथ जुड़कर चलते हैं उनके लिए सभी सम्मान बराबर है वह चाहे उच्च हो या निम्न। वे मानवता अस्मिता को पोषक सिद्ध हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दुबे, अभय कुमार, भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ. 455
2. सं. ठाकुर, समीक्षा, बात–बात में बात, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ. 281
3. सुधिराम, 'हिन्दी साहित्य में विमर्श के दौर में अस्मिता का प्रश्न', शोधछात्र डी.ए.वी. कानपुर, अपनी माटी, सं. यादव जितेन्द्र, अंक अड़तालिम, जुलाई 2023।
4. चतुर्वेदी, परषुराम, मीराबाई की पदावली, पृ. 76 द्वारा 'नारी अस्मिता से आशय', अशोक कुमार मीणा, Shivaji College, http://www.shivajicollege.ac.in
5. खेतान, प्रभा, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2004, पृ. 53
6. यादव, राजेन्द्र, सत्ता की शतरंज और दलित मोहर (संपादकीय), हंस पत्रिका, अगस्त 2004 दिल्ली से प्रकाशित

7. शब्द मसीहा, केदारनाथ, मन्टो के बाद, किताबगंज प्रकाशन, गंगापुर सिटी (राज.), प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 16, 'मजबूरी का मजाक'
8. शब्द मसीहा, केदारनाथ, मन्टो के साथ, किताबगंज प्रकाशन, गंगापुर सिटी (राज.), प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 32, 'जरूर पूछूँगा'
9. शब्द मसीहा, केदारनाथ, राहों की बातें, मचान प्रकाषन आसान नगर नदिया पश्चिम बंगाल, प्रथम संस्करण जुलाई 2018, पृ. 13–14 'अब रपट पक्की होगी'
10. शब्द मसीहा, केदारनाथ, नाविक के तीर, के.बी. एस. प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ. 25, 'पिशाचिनी'
11. शब्द मसीहा, केदारनाथ, ज़िन्दा है मन्टो भाग–2, के.बी.एस. प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ. 40 'डिटेल में बताओ'
12. शब्द मसीहा, केदारनाथ, मन्टो के पीछे, किताबगंज प्रकाशन, गंगापुर सिटी (राज.), प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 19, 'दलितों में सवर्ण'
13. शब्द मसीहा, केदारनाथ, मन्टो न मरब, मचान प्रकाशन, नदिया पश्चिम बंगाल, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 88, 'शुद्धिकरण'
14. शब्द मसीहा, केदारनाथ, शब्द गुलेल, के.बी. एस. प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2020, पृ. 79, 'राजमणि दुग्गा माँ'
15. शब्द मसीहा, केदारनाथ, कहाँ मरा है मन्टो, के.बी. एस. प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृ. 112, 'चारदीवारी के अन्दर'